1937C Of concern to women

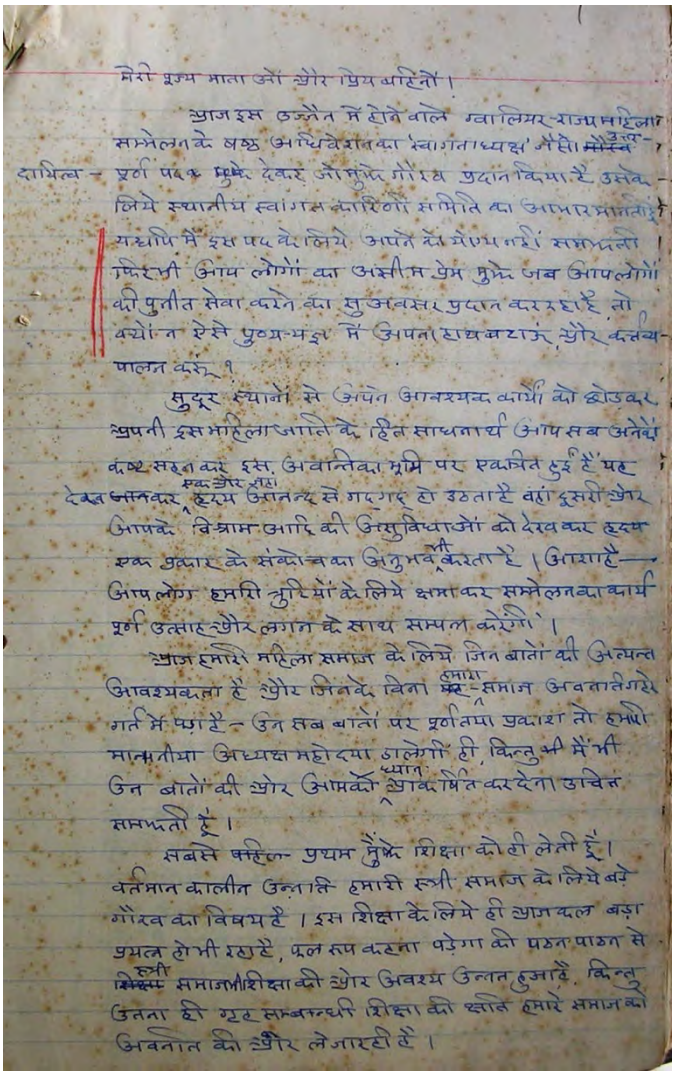

मेरी पूज्य माताओं और प्रिय बहिनों।

आज इस उज्जैन में होने वाले ग्वालियर-राज्य महिला सम्मेलन के षष्ठ अधिवेशन का 'स्वागताध्यक्ष' जैसा उत्तर-दायित्व-पूर्ण पद मुझे देकर जो मुझे गौरव प्रदान किया है उसके लिये स्थानीय स्वागत कारिणी समिति का आभार मानती हूं। यद्यपि मैं इस पद के लिये अपने को योग्य नहीं समझती फिर भी आप लोगों का असीम प्रेम मुझे जब आप लोगों की पुनीत सेवा करने का सुअवसर प्रदान कर रहा है तो क्यों न ऐसे पुण्य-यज्ञ में अपना हाथ बटाऊं और कर्तव्य-पालन करूं?

सुदूर स्थानों से अपने आवश्यक कार्यों को छोड़कर अपनी इस महिला जाति के हित साधनार्थ आप सब अनेकों कष्ट सहन कर इस अवन्तिका भूमि पर एकत्रित हुई हैं यह देखकर एक ओर जहां हृदय आनन्द से गद्गद् हो उठता है वहां दूसरी ओर आपके विश्राम आदि की असुविधाओं को देखकर हृदय एक प्रकार के संकोच का अनुभव भी करता है। आशा है—आप लोग हमारी त्रुटियों के लिये क्षमा कर सम्मेलन का कार्य पूर्ण उत्साह और लगन के साथ सफल करेंगी।

आज हमारे महिला समाज के लिये जिन बातों की अत्यन्त आवश्यकता है और जिनके बिना हमारा समाज अवनति के गर्त में पड़ा है - उन सब बातों पर पूर्णतया प्रकाश तो हमारी माननीया अध्यक्ष महोदया डालेंगी ही, किन्तु मैं भी उन बातों की ओर आपका ध्यान आकर्षित कर देना उचित समझती हूं।

सबसे प्रथम मैं शिक्षा को ही लेती हूं। वर्तमान कालीन उन्नति हमारी स्त्री समाज के लिये बड़े गौरव का विषय है। इस शिक्षा के लिये ही आजकल बड़ा प्रयत्न हो भी रहा है, फलरूप कहना पड़ेगा कि पठन पाठन से स्त्री समाज शिक्षा की ओर अवश्य उन्नत हुआ है, किन्तु उतना ही गृह सम्बन्धी शिक्षा की क्षति हमारे समाज को अवनति की ओर ले जा रही है।

जब आज प्रत्येक राष्ट्र उन्नति के शिखर पर पहुंच रहा है, तब भी हमारे इस अभागे भारत की दशा इतनी शोचनीय हो रही है. स्त्रियों की तो बात जाने दीजिए. हमारे पुरुष समाज में भी शिक्षा अभी नहीं के ही बराबर है। इने-गिने शहरों के भीतर हमें कुछ शिक्षित व्यक्ति नज़र आते हैं, पर क्या वे वास्तव में शिक्षित कहलाने के योग्य हैं? जिन्हें न अपने कर्तव्य का ज्ञान है, न अपने भविष्य की चिन्ता, न देश का ख्याल है, न धर्म का विचार। इस मशीन के युग में वे भी एक पेंच पुर्जे के समान प्राण-रहित निरुद्देश्य क्रिया करते हुए ही दिखाई देते हैं। कहां तो एक वह जमाना था, जब शिक्षित व्यक्ति अपने इह-लोक और परलोक के सुधार के साथ-साथ संसार का उद्धार करते थे और कहां आज वे शिक्षित कहे जाने वाले लोग अपना ही भार सम्भालने में असमर्थ हो रहे हैं. जो स्वयं दुखी है, दुखी है; वह दूसरे को क्या सुख दिला सकता है, दूसरे को क्या सुखी बना सकता है। यह तो हुई पुरुष समाज के शिक्षण सम्बन्धी बात।

अब ज़रा स्त्री-शिक्षा की ओर दृष्टि पात कीजिए, — हमारी बहिनें उसी पुरुष समाज की बेकार शिक्षा का अन्धाधुंध अनुकरण करती हुई चली जा रही हैं। उन्हें भी आजकल कुर्सी पर बैठ कर हुकूमत करने, वकालत करने या क्लर्की करने का शौक लग रहा है. पर क्या मैं अपनी उन प्यारी बहिनों से पूछ सकती हूं, कि क्या अब वे सब स्थान इतने अधिक हो गए हैं जो पुरुषों के सिवाय स्त्रियों को भी मिलने लगें? या क्या सारा पुरुष समाज उन कार्यों के करने के अयोग्य हो गया है. जो आज हम लोग अपना गृह-क्षेत्र छोड़ कर उनके क्षेत्र में पदार्पण करें? या अब हमें हमारे क्षेत्र में अपनी आवश्यकता नहीं रही है जो अपना आदर्श गृह-पवित्र एवं, गौरवशील क्षेत्र छोड़कर अन्य क्षेत्र के खोजने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है?

मेरे ख्याल से उक्त तीनों ही बातों का कुछ भी समुचित उत्तर नहीं है. किन्तु हमारी बहिनें बिना कुछ आगा पीछा सोचे हुये और दौड़ी हुई जारही हैं. जहां पुरुष समाज ने काफी हद तक लगान पर भी अपना समय, शक्ति और धन को बर्बाद करके भी; कुछ तत्व या हिस्सा नहीं पाया है।

हमें पुरुष समाज से इस विषय में कुछ भी कहना उन्हें हमारी अनाधिकार चेष्टा सी प्रतीत होगी, व यथार्थ में यह भी उन लोगों की गलती नहीं है. यह तो हम लोगों की ही गलती है. यदि हम लोग शिक्षित होतीं; अपने कर्तव्य को समझती होतीं; और समझती अपने एवं अपने पुरुष समाज के भविष्य को; तो कभी ऐसे दिन देखने में न आते. कि आज के शिक्षित - व्यक्ति बेकारी के मारे अपने इस जीवन से हताश होकर आत्मघात जैसे दुष्कृत्यों को करते ? आप लोगों को विदित होगा. कि इस पुरुष वर्ग की शिक्षा ने आजतक कितने नौजवानों को मृत्यु के घाट उतारा है ? कहां तो एक वह जमाना था. कि पढ़ लिखकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाला सांसारिक जीवन के परमानन्द को भोगता था. और कहां आज यह हालत, कि पढ़कर निकलने के साथ ही नौकरी का भूत सवार होता है, और उसके अनुकूल रहने पर आत्मघात का प्रयास होता है ? ओह, इस ~~आ~~ वर्तमान की कही जाने वाली उन्नति की भीतर छिपी हुई अवनति की ओर भी क्या आप लोगों ने कभी दृष्टिपात किया है ? यदि किया है. तो फिर उसी शिक्षा की ओर उन्हीं मायावी प्रलोभनों की ओर क्यों हमारी बहनें बेतहाशा भागी जा रही हैं। मैं ऐसी दौड़ लगाने वाली बहिनों के कानों तक ये शब्द पहुंचाना चाहती हूं. कि पुरुष समाज से निर्मित कराई गई यह शिक्षण-पद्धति भले ही उन्हें लाभ-जनक हो, पर हमारी व महिला समाज के लिए तो सब प्रकार से घातक ही है।

इसलिए हमें इस अधिवेशन में सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही करना होगा कि हम एक वह पठन क्रम (कोर्स) तैयार करें, जो हमें एवं हमारी भावी संतानों को स्व. स. श्री महिला समाज को सदविचार से लाभप्रद ही हो, जिससे हमारी छिपी हुई शारीरिक शक्तियों का विकास हो, हमारी शुद्ध बुद्धि का आविर्भाव हो, और हममें वही तेज, वही संयम और वही पवित्र भाव हो, कि एक बार फिर संसार की आंखें हमारी ओर फिर जावें और सीता, सावित्री, द्रौपदी, सुभद्रा आदि अपनी पूर्वज-माताओं और बहिनों के समान हम बन सकें।

आज जब कि संसार में काफी अर्थ-संकट समक्ष उपस्थित है, तो ऐसी खर्चीली शिक्षा की हमें कोई आवश्यकता नहीं है। जब हमारे ~~के~~ सामने हमारा यह एक शुद्ध गृहस्थ जीवन उत्तरदायित्व पूर्ण भार उपस्थित है तो हमें उससे पृथक कर जाने की कोई जरूरत नहीं है, जब हमारे सामने सीता, सावित्री के आदर्शों का उज्ज्वल और ज्वलंत उदाहरण विद्यमान है तो हमें इस पाश्चात्य भोग विलास के अधम या नारकीय जीवन की ओर अग्रसर होने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह वह नारकीय जीवन है जहाँ मनुष्य को अनंत अपरिमित काल तक उस कीचड़ में ही पड़ा-पड़ा सड़ना पड़ेगा और उद्धार भी जहाँ पर कल्पनातीत भी नहीं है। अतएव मेरी प्रार्थना है कि

इस अन्ध अनुकरण की ओर तिलाञ्जलि देकर अपने शुभ्र पवित्र कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर होइए, जहाँ पर आपकी शक्ति, आपका आनन्द दिन दूना रात चौगुना वर्द्धित होगा, और अन्त में आप पूर्ण स्वातन्त्र्य एवं शान्ति का अनुभव आप कर सकेंगी। तभी आपकी वास्तविक उन्नति कहलाएगी, और तभी हमारे इन प्रयत्नों की ~~[illegible]~~ सफलता का विजय डंका पश्चिम में पीटा जा सकेगा।

सुधार

सुधार के विषय में भी यही बात है। कोई भी समझदार व्यक्ति सुधार को बुरा न कहेगा, किन्तु सुधार तो यथार्थ में वही कहला सकता है, जिससे वास्तव में हमारे शरीर, मस्तिष्क, बुद्धि और मन का विकास हो, जिससे हमारे धर्म और देश का विकास हो। पर आज के सुधारों की ओर मैं जब दृष्टिपात करती हूं, तो प्रतीत होता है कि वर्तमान में जितने भी सुधार हुए हैं उन सब में बहुभाग तो उल्टे विकार को बढ़ाने वाले ही सिद्ध हुए हैं। इन सुधारों के कारण हम दिन पर दिन विकारों के पुतले बनते जा रहे हैं। हमारी गृहस्थी दिन पर दिन हमसे दूर भागती जा रही है, हम अपनी मान मर्यादा को भूल कर और उल्टे फैशन के चंगुल में फंस कर अपने तन-मन धन और स्वास्थ्य को खो कर अपनी नागरिकता और पवित्र महिमा को जलाञ्जलि देते जा रहे हैं। हमारा स्त्रीत्व सुलभ लज्जापन हमसे कोसों दूर भाग गया है और उसके स्थान पर बेहयापन इतना बढ़ गया है कि आये दिन हमें सिनेमा घरों में हमारी ही बहिनों द्वारा किये गए नग्न-नृत्यों का प्रदर्शन और अपने अंग-प्रत्यंगों यहां तक कि गुप्तांगों तक का प्रदर्शन भी देखने में आता है। क्या हम, इन सब को आधुनिकता और सुधार के नाम पर हजम कर जायें? क्या विश्वास कर लें, कि ये सब सुधार ही हैं और हमारी नारी समाज के लिए उन्नति के शिखर पर पहुंचाने में सहायक हो रहे हैं?

कोशिश करने पर भी मैं तो अभी तक यह नहीं समझ सकी, कि इन सुधारवादों के प्रपंचों से हमारा महिला समाज दिन पर दिन अग्रसर होता जा रहा है। मैं तो इसे हरगिज सुधार नहीं मान सकती, और कहती हूं, कि आप सब उपस्थित बहिनें भी मेरी बात से सहमत होंगी। यदि ऐसा है, तो हमें अपनी आवाज ऐसे धोखे बाज सुधारों के खिलाफ बुलन्द करना चाहिए, और अपनी अशिक्षित बहिनों को इन माया-जालों में फंसने से बचाना चाहिए।

परदा

अब तो प्रायः सभी समझदार व्यक्तियों ने इसे स्वीकार कर लिया है कि यह कुप्रथा - किसी जमाने में किन्हीं कारण वशों से प्रचलित हुई थी. जो कि तात्कालिक परिस्थिति के लिए उत्तम ही थी. किन्तु आज के शिक्षित शासन या शिक्षित शासनकाल में [illegible] दे विदेशी राज्यों की देखा देखी में रहते हुए इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

आज इस राक्षसी प्रथा ने हमारी कितनी ही बहिनों को स्वच्छ वायु और प्रकाश तक नसीब नहीं होने दिया। आज अगणित बहिनें इन्हीं के अभाव में राजयक्ष्मा जैसी भयंकर बीमारियों की दिन प्रति दिन शिकार होती जाती हैं। आज इस प्रथा के कारण ही गुंडों के हौसले दिन प्रति दिन बढ़ते जा रहे हैं और हम परदा के कारण इतना भी नहीं देख पाते हैं कि कौन नीच हमारे ऊपर आक्रमण करने आ गया है!!! आज यद्यपि बहुत कुछ परदे के खिलाफ आन्दोलन हो रहा है. फिर भी अभी तक पर्याप्त सफलता मिली नहीं है। इसके लिए हमें एक सामूहिक आन्दोलन करके अपनी उन बहिनों को समझाना चाहिए. जो कि अभी तक भी परदा को धर्म-पालन का एक अंग समझ रही हैं।

हमारे सौभाग्य से दक्षिण भारत या कुमायूं-गुजरात में इसका प्रचलन अभी नहीं है, जो भारत के पहले तीन भागों में तो इसका आज भी पूर्ण जोर हो रहा है, और जिससे करीब २२ करोड़ भारतीयों का आधा भाग परदे की कुप्रथा से जकड़ा हुआ दुख से पीड़ित हो रहा है। हमें इस ओर शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए. खास कर उन बहिनों को तो सबसे अधिक प्रयत्नशील होना चाहिए - जिन्होंने अपने परदे को उठाकर देश के सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। यदि इस ओर सामूहिक प्रयत्न किया गया, तो मैं दावे के साथ कह सकती हूं, बहुत शीघ्र इस कुप्रथा का मूलोच्छेदन हुआ दिखाई देगा।

हम लोग पर्दा उठाने के लिए कितनी व्यग्र हैं, किन्तु जब तक समाज से सामूहिक रूप से पूर्ण कुप्रथा का अन्त नहीं हो जाता, तब तक इसे सर्वथा दूर करने के लिए हम भी विवश हैं। हां, एक बात यहां पर कह देना अप्रासंगिक न होगा — कि पर्दा उठाने की माने यह नहीं है — कि हम अपनी स्वाभाविक विनयशीलता और लज्जापन को तिलाञ्जलि दे देवें और उसके स्थान पर उद्दण्डता और बेहयापन को स्वीकार कर लेवें।

आत्म सुधार —

दूसरों को सुधारने या सुधारने का उपदेश देने के पूर्व हमें स्वयं आत्म-सुधार करने की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि हम स्वयं सुधार के मार्ग पर चल रही होंगी, तो अन्य बहिनें हमारा स्वयं ही अनुकरण करेंगी, हमें उपदेश देने की भी उतनी आवश्यकता न होगी। इसलिए मैं अपनी शिक्षिता, विदुषी एवं उन्नति की इच्छुक बहिनों से प्रार्थना करूंगी — कि वे सबसे पहिले अपने को इस योग्य तैयार करें — कि जिनकी छाप दूसरों पर स्वतः ही अंकित हो। सीता ~~और~~ सावित्री आदि देवियां कब और किसे उपदेश देने गई थीं, पर उन्होंने त्याग, शील-तपस्या आदि के द्वारा अपना वह उच्चतम सुधार किया था, कि आज भी हजारों लाखों वर्ष बीत जाने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उनका उज्ज्वल-आदर्श सामने ही उपस्थित है — उनकी मौन मूर्त्ति मानो आज भी हमें उस आदर्श की शिक्षा देती है और प्रेरणा कर रही है कि बहिनों- पहिले स्वयं योग्य बनो, पीछे दूसरे तो तुम्हारा अनुकरण करके स्वयं ही योग्य बन जावेंगे।

गृह कलह —

आज जब संसार की ओर इस दृष्टि से देखती हूं — तो गृह-कलह को मैं घर-घर में अड्डा जमाये हुए पाती हूं। अपने भारतवर्ष को जाने दीजिए — उन्नत देशों को भी देखिए जहां पर प्रतिशत सौ के सौ ही स्त्री या पुरुष शिक्षित हैं — "पर वहां पर भी गृह कलह का शायद भारतवर्ष से भी अधिक साम्राज्य है" — ऐसा प्रतीत होता है। यदि ऐसा न होता — तो दिन प्रतिदिन वहां पर तलाक-सम्बन्ध विच्छेद की संख्या बढ़ती हुई दिखाई न आती। फिर जहां आज इस भारतवर्ष में जबकि प्रतिशत ९५ व्यक्ति अशिक्षित हैं, तब गृहकलह का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, फिर भी यह गृह-कलह हमारे लिए तो लज्जाजनक ही है। ~~शिक्षित देशों में गृह-कलह का होना~~ क्योंकि इसका शिक्षा से उतना सम्बन्ध नहीं है, जितना कि सहनशीलता, मधुरता, उदारता, त्यागशीलता आदि गुणों से है। ~~कि~~ जहां पर मैं उक्त गुण-

होंगी — वहां पर गृह कलह खड़ा भी न होने पायेगा। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में गृह-कलह का अत्यधिक ज़ोर-शोर है, क्योंकि उनकी सभ्यता के मूल में त्याग के स्थान पर स्वार्थ-साधन की ही भावना छिपी हुई है, और भोग-विलास की उत्कट लालसा का प्राधान्य रहता है, जिस समय दोनों ओर से उस स्वार्थ-साधक भावना का प्राबल्य होता है, तो गृह-कलह प्रचंड रूप धारण कर लेता है और सम्बन्ध विच्छेद तक की नौबत आ जाती है। पर जिस हमारे भारतवर्ष में त्याग-तपस्या की भावना ही प्रधान है, यहां तक कि स्त्री के लिए पुरुष ही प्राण है, देवता है, आदर्श है — सब कुछ है. और पुरुष के लिए स्त्री देवी है, जीवन शक्ति है लक्ष्मी है - सभी कुछ है, कि अपने देश में गृह-कलह क्यों हो? ऐसे उच्च आदर्श को देखते हुए तो यही कहना पड़ेगा - कि यदि इतने पर भी हमारे यहां गृह-कलह देखने में आती है, तो कहना पड़ेगा कि अवश्य कोई न कोई विषैला बीज हमारे भीतर आ गया है - सम्भव है - यह पाश्चात्य वातावरण का या शिक्षा का असर हो, या अपने अपने कर्तव्यों की अज्ञानकारी! अथवा कोई भी हो सकते हैं। फिर भी यदि हम इस बुराई को दूर करना चाहें — तो पाश्चात्य सम्बन्ध-विच्छेद की राक्षसी प्रथा को बिना अपनाए ही बहुत आसानी से दूर कर सकते हैं। वह उपाय यह है कि पुरुष और स्त्रियां दोनों ही पहले तो अपने २ कर्तव्यों को खूब भली भांति समझ कर उनका अमल करें; और कदाचित् इतने पर भी कहीं कलह उत्पन्न हो तो सप्ताह में एक दिन ऐसा नियुक्त कर लें - जो पूर्णरूप से 'दम्पति' के लिए ही हो - उस दिन परस्पर में विचार-विनिमय कर जो भी भ्रान्ति इनके उल्टी धारणा पैदा हो गई हो, वह धुल जाय - सदा के लिए दूर हो जाय। मैं समझती हूं यदि स्त्री चाहें तो इस सबसे सरल और पवित्र पारिवारिक प्रीति के उत्पन्न करने वाले इस अमोघ उपाय का आश्रय लेंगी - ~~तो मैं समझती हूं~~ हमारे देश से गृह-कलह का सर्वथा अन्त हो जायगा।

यदि इतने पर भी दो अंगों में से कोई एक अंग अधिक विषम या विकृत है — तो वहां पर ~~क्षमा का भी~~ त्यागमयी उदार भावना का — विरोधी व्यक्ति को भी अपनाने का आश्रय लेना चाहिए — ना कि सम्बन्ध विच्छेद जैसी [illegible] एवं भयावह त्याग रूप - तलाक प्रथा का। ~~यदि~~

यदि हम अपने प्राचीन सतियों के आदर्शों पर न चलकर इन - चलचित्र - पाश्चात्य आदर्शों का अन्धानुकरण करेंगी - तो फिर वह

बात निश्चित है कि हमारे यहाँ भी उसी तरह दोनवीयता नारकीय होन ; बन जायेंगी — जैसे अन्य देशों के बन रहे हैं; जहाँ न वात्सल्य प्रेम नज़र आता है, न कौटुम्बिक सुख, न गृह शान्ति।

स्त्री ~~हमारे~~ और पुरुषों के बीच, हमारे पूर्वाचार्यों ने किस अनुपम बीज का वपन किया है यह भी एक विचारने योग्य बात है, जहाँ एक ओर महर्षिगण स्त्रियों को यह आज्ञा देते हैं - कि तुम्हारे लिए पति ही देवता है, पति ही ईश्वर है, पति ही प्राण है, वही सब कुछ है वहीं दूसरी ओर ~~[illegible]~~ पुरुषों को भी वही आज्ञा देते हैं कि 'जिस घर में' नारियां पूजी जाती हैं, उस घर में देवता सदा निवास करते हैं। ये मनु महाराज के बतलाए हुए अन्य कोई देवता नहीं हैं - पति देवता हैं। यदि पति देवता अपनी पत्नी के साथ अपने कर्तव्य का पालन करते हैं तो वह भी अपना सर्वस्व न्योछावर कर पति के प्रत्येक कार्य में सहायक बनती है और 24 घंटे ही अपनी त्यागमयी सेवा के द्वारा, अलौकिक और अनुपम दुर्लभ प्रेम के द्वारा, उन्हें देवियों के समान लोभा- करती है - आनन्द से परिप्लावित करती रहती है।

प्रिय बहनो, देखा आपने अपने पूर्वजों की दूरदर्शी अतीन्द्रिय ज्ञान को, — कितने दूर की बात सोचकर उन्होंने दोनों के लिए - कितने अनुपम मार्ग को उभारा। यदि आज भी स्त्री और पुरुष उसी प्राचीन ~~[illegible]~~ आदर्शों पर चलने लग जायें तो कहीं भी गृहकलह ~~के~~, सिर के लिए ढूंढने पर भी स्थान नहीं होगा। मैं तो इससे भी आगे बढ़कर कहती हूँ, कि यदि पुरुष समाज अपने उस उच्च आदर्श की उपेक्षा करता है, या अवहेलना करता है, तो करने दीजिए- हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं है। यदि हम चाहें अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ़ हैं, यदि हम सब अपने त्याग-तपस्या से, सेवा सद्भाव से (प्रेम) से, सेवा भाव से - अपना प्रेम ला चला सकती हैं, तो बिचारे पुरुषों की क्या हस्ती है जो हमारा निरादर कर सकें। मैं समझती हूँ - त्याग-तपस्या और अखण्ड पुरुष एवं निःस्वार्थ प्रेम के सामने ऐसी कोई भी विरोधी शक्ति नहीं है जो एक क्षण भी टिक सके। हमने स्वयं ही अपना कर्तव्य- और प्रेम परिपूर्ण व्यवहार करना छोड़ दिया जिसका फल उल्टा ही बोल रहा है कि सुख शान्ति के आधार हमारे ये परिवार-

गृह, आज कलह और अशान्ति के घर बन गए हैं; और उन घरों में - रहने वाले देवी-देवता और एक विलक्षण ही रूप में जाहिर हो रहे हैं; जिन्हें मैं किसी [illegible] प्रकार नहीं कह सकती हूँ।

यथार्थ में उत्तम जीवन क्षेत्र तो घर के भीतर ही है, परन्तु- गृह-क्षेत्र पर तो हमारा ही पूरा अधिकार है, कि यदि उनमें कोई खराबी पैदा होती है, तो हमीं लोग उसके उत्तरदायी हैं। कोई भी समझदार व्यक्ति यह फैसला सुना देगा - कि तुम्हारे क्षेत्र में अशान्ति- या कलह होने से तुम्हीं लोग उसके दोषी या अपराधी हो। जैसे जीवन के सकल क्षेत्रों में [illegible] आज अशान्ति का साम्राज्य दिखाई देता है - उत्तम समाज उसका अपराधी ठहराया जा रहा है। लेकिन — कहा तो यह जाता है कि यदि संसार की [illegible] शासन प्रणाली- या बागडोर स्त्रियों को सौंप दी जाए, तो एकदम सार्वभौमिक शान्ति का साम्राज्य फैल जाएगा — पर ऐसी अभी कहिये — जब हम लोग अपने गृहक्षेत्र में ही शान्ति न फैला सकीं; अशान्ति और कलह को न हटा सकीं — तो क्या आशा की जा सकती है और क्या दावा किया जा सकता है कि हम संसार भर में शान्ति का साम्राज्य फैला सकेंगी।

स्त्रियां उस शक्ति की सजीव मूर्तियां हैं — जो चाहें तो आज संसार में क्रान्ति मचा दें या चाहें तो शान्ति का साम्राज्य हो जाए। पर हमने अपने उस असली 'रूप' को आज तक पहचाना ही नहीं। यदि कुछ किया — तो यही - कि जरा-जरा सी बातों पर उत्तम समाज से लड़ती रहीं, और गृह को अशान्ति और कलह का घर बनाती रहीं। कहिये — अपनी अनादिकालीन सम्पत्ति के हानि करके और व्यर्थ समय में व्यतीत करके - किन्तु सोचो तुम्हारे चरणों पर [illegible] है या नहीं? तुम्हारा पूजन होता है या नहीं? और संसार में सार्वभौमिक शान्ति का साम्राज्य फैलता है या नहीं? ।

ऐसी कुछ कहने में मेरी बात पर मजाक उड़ा रहीं होंगी; या मुझे पागल समझ रही होंगी - पर मैं दावे के साथ कहती हूं, कि यदि हम अपनी खोयी या छिपी हुई शक्ति और अपरिमित-प्रेम को निकालें तो [illegible], अपने उद्गारों को तो एक दिन सार्वभौमिक शान्ति का साम्राज्य छाये बिना नहीं रह सकता।

विधवा-विवाह

आज विधवाओं के पुनर्विवाह का प्रश्न चारों ओर छिड़ा हुआ है. यहां तक कि ग्वालियर-राज ने हाल ही में इसके लिए एक नया कानून भी विचारार्थ उपस्थित किया है। परन्तु मैं विधवा-विवाह के हामियों से पूछ सकती हूं कि क्या आपलोगों ने इस प्रथा को प्रचलित करने के पूर्व अपने सनातन धर्म की नीति, रीति और प्रीति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है? क्या आपलोगों ने कभी अपने धार्मिक इतिहास पर मनन पूर्वक विचार किया है? क्या इस प्रथा के हानि-लाभों पर सर्वांग और पक्षपात विरोध रहित विचार किया है? यदि हां, तो फिर ऐसे विचारों का उत्थान ही क्यों हुआ? क्योंकि अपने सनातन की नीति, उसका इतिहास, और उसकी चिरस्थायिनी शान्ति रखने की प्रवृत्ति इस प्रथा के सर्वथा प्रतिकूल है। हमारा धर्म थोड़ी सी विषय-वासना की तृप्ति के लिए चिरस्थायिनी शान्ति को नहीं छोड़ सकता। उसके सम्मुख विषय तृप्ति से विषय निवृत्ति का मूल्य सहस्त्र गुणा अधिक है। कामाग्नि में अपने आपकी आहुति देने की अपेक्षा उसे शान्त करने के लिए विषयाग्नि में गिरकर पवित्रता, धार्मिकता एवं शान्ति को भस्म कर देना मैं पसन्द नहीं करती। यह इच्छा-निरोध आत्म विकास का कारण है जो कि सनातन धर्म का मुख्य उद्देश्य है। यही कारण है कि कुछ एक विधवाओं द्वारा पथभ्रष्ट होते हुए देखने पर भी हमारा सनातन धर्म या हिन्दू समाज विधवा-विवाह की कभी भी आज्ञा नहीं देता। क्योंकि विधवा विवाह होने से उसका स्वतः सिद्ध उद्देश्य और अनादि काल का आदर्श नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। फिर वह शान्ति जो सनातन धर्म के अनुसार साधुजीवन या गृहस्थाश्रम में प्रसारित है — दीपक लेकर भी नहीं मिलेगी। वह महत्व जो आज भारत एवं सनातन-धर्म को प्राप्त है — समूल नष्ट हो जायगा। आजकल थोड़ी सी विधवाओं के कुछ पापों की दुहाई देकर इस प्रथा को कानून से प्रचलित करने की आवश्यकता बताई जाती है, लेकिन यह कारण ऐसा है जिसे हम दूर कर सकते हैं और अपने सतीत्व धर्म का पवित्र उद्देश्य स्थिर रख सकते हैं। जिस शक्ति का व्यय विधवा विवाह के प्रचार में किया जाता है; उस शक्ति का व्यय दूसरे उपाय से विधवाओं की संख्या वृद्धि के कारणों को समूल नष्ट करने में लगाना चाहिए। जिससे भविष्य में विधवाओं की संख्या वृद्धिहीन है. और जो वर्तमान में हैं — उनको इच्छा निरोध और संयम पूर्वक जीवन बिताने का पाठ पढ़ाना चाहिये। उनको धीरज का — कुटुम्ब भी [illegible]

हो, विधवाश्रम और शिशुशालायें हो सकती हैं। अतएव सुधारक लोगों को अपनी शक्ति का व्यय — कुटुम्ब को विधवाओं के साथ सत्कार का बर्ताव कराने और स्त्री-शिक्षा प्रचार में ही करना चाहिए।

आज जिन गुणों के कारण हमारी स्त्रियाँ 'देवियाँ' कही जाती हैं, उन्हीं दैवी गुणों के अभाव में स्वार्थ सिद्धि के रूप में परिवर्तित होकर अनेक अंशों की दिखेंगी और हमारा कुटुम्ब 'शान्ति-निकेतन' न होकर कलह-केतन बन जायगा। फिर हममें सीता द्रौपदी दमयन्ती अंजना आदि स्त्री-रत्नों की उत्पत्ति न होकर उन स्त्रियों की उत्पत्ति होगी — जो रोटी के टुकड़ों के लिए अपने शरीर की पवित्रता को बेच देती हैं। क्या विधवा विवाह के पक्षपाती बता सकते हैं कि आज भी आर्य-ललनायें जिस त्यागमय भाव के कारण अपनी पवित्रता की — शील की रक्षा के लिए सदा आत्मसमर्पण करने को तैयार रहती हैं — विधवा विवाह के चालू होने पर उसी प्रकार की रह सकेंगी? क्या कायदों में भी त्यागमय भाव पैदा हो सकते हैं? क्या अपवित्र जल में भी पवित्रता का प्रतिबिम्ब दिखाई दे सकता है? नहीं, कभी नहीं। क्या सड़े हुए दूषित वस्त्र या रुई से भी शुद्ध हो सकता है?

जिन लोगों का यह कहना है कि विधवा-विवाह से विधवाओं के दुराचार, गुप्त पाप, और भ्रूण हत्यायें एकदम बन्द हो जावेंगी, उनसे मैं पूछती हूँ कि पश्चिमी देशों में तो कभी से विधवा विवाह जारी है, पर क्या वहाँ भ्रूण हत्यायें नहीं होतीं? और क्या वहाँ पर गुप्त पाप नहीं होते?

दूसरे — क्या कभी विषयों की तृप्ति से भी दुराचार-निरोध हुआ है? क्या मन:संयम के काम को बदल कर तेल के बिन्दुओं से अग्नि प्रदीप्त मार्ग में स्वच्छंद-अनियंत्रित-पथिकों को छोड़ देना — दुराचार निरोध न कहलाता है? इसलिए जो विधवा विवाह का कानून राज्य में जारी करने का प्रयत्न किया जा रहा है, वह तो धर्म मर्यादा का लोप करने वाला ही है। और मैं तो अपने धार्मिक नियमों को कानून से जकड़ा जाना अनुचित समझती हूँ। दयानन्द शारदा बिल बाल विवाह रोकने के लिए बहुत उत्तम है, पर वहीं कानून होने से कहीं २ विषय एवं अनेक कष्ट हो रहे हैं क्योंकि किसी स्वस्थ कन्या का यदि १२ वर्ष की अवस्था में १६ वर्ष का दिखने लगता है और रजस्वला हो जाती है और कोई १८ वर्ष तक भी — १२ वर्ष की छोकरी दिखती है पर कानून की आड़ में तो सभी को एक समान पिसना पड़ता है

फलप्रद होता है कि कुंवारी कन्याओं को भी गर्भ रहने सुनने में आते हैं। इसलिए शास्त्रों से अपने धार्मिक या सामाजिक हकों को बांधना तो मैं सर्वथा बुरा समझती हूं। फिर चाहे कि सर्वथा प्रतिकूल विधवा-विवाह को कानून जारी करने का प्रश्न तो और भी लज्जास्पद है।

हां, इतनी बात अवश्य स्पष्ट कर देना उचित समझती हूं कि प्रत्येक उत्तम मार्ग के साथ अपवाद मार्ग चला आते हैं, सो जो विधवायें इस आदर्श एवं पवित्रता पूर्ण जीवन को बिताने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाती हों, उन्हें चाहिए कि वे बिना किसी संकोच के और छद्म-वादों में प्रवृत्ति न करके अपने संरक्षकों से स्पष्ट कह दें कि मैं इस पवित्र मार्ग पर चलने में असमर्थ या विवश हूं, आप स्वयं ही मेरा कोई योग्य सम्बन्ध कर दीजिए। और उनके संरक्षकों का भी कर्तव्य है कि वे बिना किसी संकोच के — या झूठी लोक लाज के — अपनी विधवा बहिन-बेटी या बहुओं को उचित सम्बन्ध का प्रदान देवें।

सम्बन्ध-विच्छेद या तलाक —

विधवा विवाह एवं तलाक में जो बातें बतलाई गई हैं उनसे ही इस तलाक प्रथा का भी समाधान हो जाता है

श्री सि० सेठानी सा० रत्नप्रभा देवी के महिला मंडल के सभानेत्री के पद से दिया गया भाषण — जो कि पूर्व तैयार किया — पर कुछ स्थल उनकी मर्जी के मुताबिक लिये गए हैं

ही. प्र.
सितम्बर १९३८